अच्छे शिक्षक और ज्ञानार्जन

कृष्ण हरेश

परिप्रेक्ष्य

यह बात अच्छी हो या बुरी, मानव समाजों में स्कूली व्यवस्थाएँ अब स्थापित हो चुकी हैं। घर में ही स्कूलिंग को छोड़ दें तो स्कूल चाहे मुख्य धारा का हो या वैकल्पिक, बच्चे घर और माता-पिता से दूर वयस्कों के एक और समूह के पास जाते हैं, जिन्हें शिक्षक कहते हैं और यहाँ वे एक ऐसी गतिविधि के लिए जाते हैं जिसे हम शिक्षा कहते हैं। स्कूलों में शिक्षा कमोबेश स्पष्ट लक्ष्यों के साथ की जाने वाली गतिविधि है। स्कूलों ने ज्ञानार्जन के इस प्रोजेक्ट के एक बड़े हिस्से को (व्यावसायिक तथा आर्थिक मायनों में) अपने व्यापार के तौर पर ले लिया है। स्कूल व्यक्तियों को भविष्य में किसी पेशे के लिए तैयार करने की आशा करते हैं।

स्कूल जाना बस एक नियम ही नहीं है : यह तब तक के लिए ही एक मानक है जब तक कि आपके लिए इसका खर्च वहन करना सम्भव न हो। उनमें से अधिकतर माँ-बाप के लिए, जिनके लिए ऐसा कर पाना सम्भव हो, शिक्षा उनके बच्चों के बौद्धिक विकास, व्यावसायिक जगह बना पाने, सामाजिक स्तर पर ऊपर की ओर गतिशीलता और कई अन्य ऐसे ही लेकिन विभिन्न कारणों से स्पष्ट तौर पर आवश्यक है। कुछ लोग शिक्षा को एक मानवीय इन्सान को पोषित करने की ओर प्रवृत्त एक आध्यात्मिक गतिविधि के रूप में देख सकते हैं।

कुल मिलाकर स्कूलों को जीवन के लिए एक तैयारी के रूप में देखा जाता है और स्कूली शिक्षा एक सुरक्षित भविष्य की जरूरत के साथ बँधी नजर आती है (या तो पूरी शिद्दत से अपनाए गए पेशे के रूप में या फिर एक विकासरत वेतन के स्रोत के रूप में) या फिर स्वयं की इच्छा-पूर्ति के लिए। अपनी शिक्षा के लिए विद्यार्थियों के लक्ष्य केवल उनके माता-पिता की (और कुछ अपनी भी) आकांक्षाओं से संचालित नहीं होते बल्कि समाज की उन माँगों से भी प्रभावित होते हैं जिन्हें हम किसी विशेष सामाजिक परिवेश के सरोकारों में स्थित कर सकते हैं। इस व्यापक क्षेत्र में स्कूली व्यवस्थाएँ स्वतंत्र और विलग खिलाड़ी नहीं हैं। वे अक्सर विद्यार्थियों को विशिष्ट तरीकों से सक्षम बनाने या दिशा-निर्देशित करने का वादा करती हैं – ऐसे तरीकों से जो मौजूदा समाज की माँगों को सुव्यवस्थित तौर पर पूरा करते हैं या फिर एक नए और अपेक्षित बेहतर समाज की माँगों के लिए।

व्यक्ति के तौर पर शिक्षक

अब हम शिक्षक की बात कर सकते हैं। दुर्भाग्य यह है कि शिक्षक को अक्सर इस स्कूल-व्यवस्था का बस एक तत्व मात्र बना दिया जाता है। आम-प्रचलित भाषा-प्रयोग में मशीन का एक पुर्जा, जिसे भविष्य की सफलताओं के लिए तयशुदा संवेग को बनाए रखने हेतु स्थित करते हुए गति दी जाती है, और जिसका इस्तेमाल व्यावसायिक तथा अकादमिक प्रशिक्षण की स्थापित रिवायत को बनाए रखने के लिए होता है।

लेकिन मेरा विचार है कि शिक्षक किसी के लिए या किसी जगह के लिए नहीं होते। वे न तो स्कूल नामक विशेष संस्थाओं के प्रतिनिधि होते हैं और न ही वे एक ऐसे समाज के एजेन्ट हैं जिसने उन्हें अपनी आवश्यकताओं को पूरा करने के मकसद से युवा दिमागों को ढालने के लिए रोजगार दिया है। वे तो ज्ञानार्जन की प्रक्रिया से सम्बद्ध होने वाले स्वतंत्र खोजी हैं। वे किन्हीं विशेष विचारधाराओं के प्रचारक नहीं हैं, वे हर तरह की विचारधारा के विचारशील आलोचक हैं। वे वयस्क संसार के अनुकरणीय व्यक्ति या आदर्श नहीं हैं। बल्कि वे उस संसार से बाहर कदम रखने वाले, उस समाज की ओर पीछे नजर डालने वाले और उस पर टिप्पणी करने वाले वयस्क हैं जिसे कई वयस्कों ने आवेश में, और कई बार विवशता में, चाहे-अनचाहे, रचा है।

लगता है कि विद्यार्थियों और उनके सीखने पर सीधा और पूरे जोर के साथ प्रभाव छोड़ने की सामर्थ्य एक शिक्षक में होती है। अक्सर इनमें से कई अच्छे शिक्षक हमारे लिए दीर्घकालिक चिन्तन और सोच-विचार से सम्बद्ध सबक छोड़ जाते हैं। जब मैं अपने जीवन में आए अच्छे शिक्षकों के गुणों को याद करता हूँ तो मैं देख-समझ पाता हूँ कि किस वजह से वे अच्छे शिक्षक थे। अच्छे शिक्षक अपने विद्यार्थियों की जरूरतों और प्रतिक्रियाओं के प्रति संवेदनशील, बिना शर्त स्नेही लेकिन कुछ हालात में डाँटने वाले, खुले मन के व्यक्ति होते हैं। वे जानकार और ज्ञानवान होते हुए भी सीखने को तैयार होते हैं, अपनी कक्षा के लिए अच्छे से तैयार होते हुए लचीले, सहज और स्वत: स्फूर्त स्वभाव के। वे आदान-प्रदान में स्तर की ऊर्जा दर्शाते हैं, सीखने की सामग्री व्यवस्थित करने में बड़ी पहलकदमी भी लेते हैं। वे व्यवहार में अनौपचारिक, ध्यान देने वाले, प्रतिक्रिया देने को तैयार और आसानी से उपलब्ध रहते

हैं। वे सख्त होते हुए भी दयालु होते हैं और उनमें विद्यार्थियों तथा कक्षा से भी ऊपर उठते हुए जिम्मेदारी की गहरी भावना होती है और समय के साथ वे हमें अपने ही जैसे हाड़-माँस के सामान्य इन्सान की तरह दिखाई देते हैं। अक्सर इन शिक्षकों में अपनी अच्छाई का कुछ एहसास नहीं होता और इसलिए वे विनम्र होते हैं। और बहुत ही सराहनीय।

शिक्षण, एक पेशे के रूप में

एक सहकर्मी ने हाल ही में 'द इकॉनमिस्ट' में शिक्षण और शिक्षक-प्रशिक्षण पर छपा एक लेख साझा किया। कक्षा का छोटा या बड़ा होना, (विद्यार्थियों को) योग्यता के मुताबिक व्यवस्थित/पंक्तिबद्ध करना आदि जैसी बातें बहुत से माँ-बाप के लिए सबसे अधिक महत्व रखती हैं। लेकिन लगता यह है कि इन बातों का विद्यार्थी के सीखने के सफल अनुभव पर लगभग कोई भी प्रभाव नहीं पड़ता। यह सफलता सबसे अधिक तो शायद शिक्षक के कौशल से प्रभावित होती है, यानी इस बात से कि शिक्षक असल में सब सम्बद्ध विद्यार्थियों के साथ कक्षा में क्या करता है।* यह शायद बहुत हैरत में डालने वाली बात न लगे लेकिन इस पर किए गए अध्ययनों की बड़ी संख्या को ध्यान में रखें तो यह बहुत फायदे की बात है – जिसके मुताबिक यह स्थापित हुआ कि शिक्षक बेशक शिक्षा की एक विशाल व्यवस्था में प्रभाव और परिवर्तन का एक मूल एजेन्ट दिखाई देता है।

इसके अलावा लेख यह भी सुझाता है कि अक्सर विश्वास किया जाता है कि अच्छा शिक्षण एक जन्मजात, स्वाभाविक कलात्मक प्रतिभा है। शिक्षक इसके साथ ही जन्म लेते हैं। यह बात बहुत ही दुर्लभ मामलों में सही हो सकती है, लेकिन यह तो स्पष्ट ही है कि कक्षा में शिक्षण अधिकतर एक परिष्कृत, दक्षतापूर्ण हुनर है जिसके बारे में सीखा और जाना जा सकता है। दक्षताएँ सीखी जा सकती हैं, उन्हें पैना किया जा सकता है, तकनीकों को अच्छे से समझा और लागू किया जा सकता है।

उदाहरण के लिए, व्यवहारवादी विज्ञान के तहत समझी और व्याख्यायित की गई इस प्रकार की शिक्षण-प्रथा को शैक्षिक मनोविज्ञान के क्षेत्र में सीखा जा सकता है। इस विषय में हुए शास्त्रीय और समकालीन अनुसन्धान में पर्याप्त ऐसी जानकारी है जिससे हमें कक्षा में शिक्षण हेतु ऐसे विचार मिलते हैं जिन्हें हम चाहें तो जीवन भर लागू कर सकते हैं। यह अनुसन्धान लाभप्रद सिद्धान्तों और प्रतिमानों से भरा पड़ा है। जानकारी मिलती है कि शिक्षकों और विद्यार्थियों की शिक्षण और सीखने की शैलियाँ हैं और व्यक्तित्व सम्बन्धी शैलियाँ भी; बोध और नैतिक विकास में बच्चों के विकासात्मक मीलपत्थर होते हैं; अनुसन्धान में शैक्षिक संस्थाओं के लिए, इस बारे में लाभप्रद विचार भी हैं कि प्रभावशाली होने के लिए अपने स्थान को कैसे व्यवस्थित किया जाए; और सीखने की विशेष आवश्यकताओं के लिए समावेशी शिक्षा के बारे में भी विचार हैं - आदि-आदि।

हम इस क्षेत्र से मिलने वाली अन्तर्दृष्टि को दरकिनार नहीं कर सकते। प्रभावशाली शिक्षण-प्रथाओं के बारे में जानना-सीखना व्यक्तियों के सीखने के अनुभव को बेहतर ही कर सकता है।

अच्छा शिक्षण और एक अच्छा शिक्षक

प्रभावशाली शिक्षण की तकनीकों को तो समय-समय पर लागू किया और दोहराया ही जाना चाहिए लेकिन मेरे विचार से हमें शिक्षण और सीखने की उस संस्कृति को समझने में भी दिलचस्पी होनी चाहिए जिसे रचने में हम योगदान देते हैं। मैं कुछ ऐसे सवालों पर संक्षेप में चर्चा करना चाहूँगा जिनमें इस बात की सम्भावना मौजूद है - बल्कि कक्षा के वातावरण को परिवर्तित करने की भी सम्भावना है। ये वे सवाल हैं जिनसे मैं शिक्षण की अपनी यात्रा में प्रेरित हुआ हूँ (बल्कि ये बार-बार मेरे जेहन में आते रहे हैं)। आशा है कि इनसे कुछ सोचना-विचारना पैदा होगा जिससे विभिन्न तरह के काम निकलकर आ सकते हैं न कि दैनिक दिनचर्या में विशेष काम के लिए बस सामान्य दिशा-निर्देश।

पहले एक शुरुआती बात : एक अच्छे शिक्षक को स्वीकारना महत्वपूर्ण है लेकिन हमें अच्छे शिक्षण के बारे में सोचना और उसे तलाशना-परखना चाहिए न कि कुछ विशेष व्यक्तियों को अच्छे शिक्षक के तौर पर चिह्नित करना। महत्वपूर्ण बात सीखना-सिखाना, शिक्षण और ज्ञानार्जन है – यह शैक्षिक प्रक्रिया के केन्द्र में है। एक शिक्षक को अच्छे या बुरे के तौर पर मूल्यांकित करने से ध्यान व्यक्ति और उसकी विशेष सामर्थ्य पर आवश्यकता से अधिक केन्द्रित रहता है। उसकी किसी भूमिका के सन्दर्भ में किसी व्यक्ति के मूल्यांकन की तह में कोई विशेष मान्यता रहती है, जिसके तहत उसे अपरिवर्तनीय योग्यताओं वाले एक सुपरिभाषित, कमोबेश स्थायी पहचान के व्यक्ति के रूप में लिया जाता है। हमें इस बात को सन्देह की नजर से देखना होगा।

ये विचार मेरे खुद के नहीं हैं और कई विचारकों से प्रेरित हैं। मैं पिछली सदी के जाने-माने विचारक और वक्ता, जे. कृष्णमूर्ति (जिन्होंने जीवन और शिक्षा पर बहुत वार्तालाप किया है) द्वारा उठाए गए कुछ सवालों को लेना चाहूँगा। हम कह सकते हैं कि शिक्षण और ज्ञानार्जन की प्रक्रिया को ज्ञानयुक्त रखने के लिए इन सवालों को जिन्दा रखे जाने से एक अच्छा शिक्षक बनता है।

एक सही सम्बन्ध होने का क्या अर्थ है?

ऐसा लगता है कि सम्बन्ध सीखने के केन्द्र में होता है - कम से कम एक स्कूल में तो जरूर। न केवल विद्यार्थियों और शिक्षकों के बीच एक ईमानदार, खुले दिमाग का सम्बन्ध, बल्कि सहकर्मियों तथा शिक्षकों और माता-पिता के बीच भी। इसका अर्थ होगा कि वयस्क के तौर पर किसी अन्य के साथ प्रतिस्पर्द्धा की भावना नहीं होगी और न ही शिक्षा की प्रक्रिया में सामर्थ्य तथा महत्व के अर्थ में किसी के साथ तुलना की जा रही होगी।

इसी तरह, क्या विद्यार्थियों को जैसे वे हैं, वैसे ही देखना सम्भव होगा? यानी एक व्यक्ति के सीखने के अनुभव को उसी रूप में देखना जैसा वह है – तुलनात्मकता के बिना। क्या एक शिक्षक अपनी इस जरूरत के प्रति जागरूक और सतर्क हो सकता है कि विद्यार्थियों से उसे अनुमोदन और प्रशंसा मिले? क्या सम्बन्ध को इस तरह स्थापित किया जा सकता है कि उसमें पूर्ण और गहरे रूप से जिम्मेदारी का भाव हो, जहाँ निज के हित और व्यक्तिगत महत्वाकांक्षा उभरते दिखें तो हम सजग रहते हुए उनका यह उभरना देख पाएँ?

कक्षा में व्यवस्था की जाँच-पड़ताल कैसे हो?

कक्षा पर नियन्त्रण होने को एक अच्छे शिक्षक की सबसे बड़ी विशिष्टता माना जाता है! ऐसा लगता है कि अनुशासन निकलवाना और व्यवस्था स्थापित करना एक व्यक्ति में गहरी तसल्ली का भाव पैदा करता है। मैं यह नहीं कह रहा कि एक अव्यवस्थित, अराजक कक्षा बेहतर होती है। लेकिन शायद बेहतर यही है कि ज्ञानार्जन की प्रक्रिया को खुलने दिया जाए और ऐसा व्यक्तिगत ज्ञान या अनुभव की सत्ता पर बल दिए बिना किया जाए। एक प्रिय सम्बन्ध बनने पर इन दोनों बातों को उनका उचित आदर-सम्मान मिल जाएगा। जहाँ एक ओर विषयवस्तु के बारे में निश्चित न होना या कक्षा में विद्यार्थियों के साथ व्यवहार या विषय में अक्षम होना अस्पष्टता की ओर ले जाता है, वहीं इसकी कोई गारण्टी नहीं है कि इसके विपरीत स्थिति में प्रभावी ज्ञानार्जन होगा ! कक्षा में अनुशासन विद्यार्थी के व्यवहार पर कठोर नियन्त्रण के बारे में नहीं है बल्कि सीखने की जिज्ञासा को प्रोत्साहित करने के बारे में है। दमनकारी या दबाव वाले शिक्षक-विद्यार्थी सम्बन्धों में ऐसा हो पाना सम्भव नहीं होगा।

भय और विरोध का ज्ञानार्जन पर क्या प्रभाव रहता है?

स्कूलों में अब प्रदर्शन की ही बात होती है। अक्सर, एक अच्छा स्कूल ढूँढ पाना माता-पिता के लिए अच्छे माता-पिता होने का सबूत बन गया है! लेकिन ज्ञानार्जन बस इसके बारे में ही नहीं हो सकता। प्रदर्शन या कार्य का मूल्यांकन और आकलन विद्यार्थियों में दक्षता-विकास को समझने के उपकरण हैं। इन उपकरणों का निरन्तर इस्तेमाल किसी के ज्ञानार्जन के बारे में निर्णय लेने के लिए, और सीखने को केवल प्रदर्शन से जोड़कर तथा ज्ञान के संग्रहण के रूप में देखा जाता है तो शिक्षक और विद्यार्थी, दोनों में चिन्ता और घबराहट ही पैदा होते हैं। ये उपकरण सीखने की सम्पूर्ण प्रक्रिया का स्थान नहीं ले सकते। स्कूलों में कक्षाओं के कमरे और सम्बन्ध विषय और कार्य-प्रदर्शन से सम्बद्ध डर मन में बैठा देते हैं। क्या हम इस बात को समझ सकते हैं कि अच्छा प्रदर्शन कर पाने से सम्बद्ध यह भय किस तरह एक बाधा का काम करता है? - केवल एक विषय में प्रदर्शन या एक रिश्ते में भय को समझने के अर्थ में नहीं, बल्कि स्वयं भय के बारे में सीखने हेतु अवलोकन के अर्थ में। सीखना एक भावनात्मक अनुभव है – उससे भी अधिक जितना कि हम मानने को तैयार हैं। हम यह समझ पाएँ तो काम करने के प्रति विरोध की समस्या सुलझाने का भी संकेत हमें मिल सकता है। ऐसे में शायद किसी भी बाहरी उत्प्रेरक की जरूरत हमें न पड़े।

प्रेरणा को कैसे समझा जाए?

हम वयस्क के तौर पर अपने जीवन में विभिन्न तरह की हिंसा को निरन्तर बनाए रखते से दिखाई देते हैं। ऐसा ही एक उदाहरण है ज्ञानार्जन की समस्याओं से सम्बोधित होते हुए ईनाम और दण्ड देने की प्रवृत्ति। प्रेरणा की इस व्यवस्था की हिंसा को सीधे तौर पर देखना सम्भव है। यह तो बहुत जल्दी ही स्पष्ट हो जाता है कि दण्ड हिंसक क्यों है, लेकिन ईनाम का हिंसक होना शायद इतना स्पष्ट न हो। मेरे विचार से जब हम अपेक्षित व्यवहार को छाँटकर ईनाम देते हैं और इस तरह ईनाम देने को अनुकूल व्यवहार के साथ जोड़ते हैं तो हम विद्यार्थियों को पावलोव के कुत्तों की तरह देख रहे होते हैं! यहाँ मैं प्रेममयी एवं सच्चे मन से प्रोत्साहन, प्रभावी प्रशंसा, उचित डाँटना जैसी बातों का जिक्र नहीं कर रहा।

ईनाम और दण्ड की एकांगी व्यवस्था अनुकूलन, अधिकारियों के प्रति बेसमझ आज्ञाकारिता और रचनात्मकता के दमन को प्रोत्साहित करती है। हम गणित और अँग्रेजी साहित्य तो सीख ही सकते हैं, इसी तरह किसी को गणित और अँग्रेजी साहित्य सीखने के लिए चालाकी से संचालित करने में निहित हिंसा के बारे में भी जान सकते हैं।

ऊपर चर्चा में आए चार सवाल एक शिक्षक के लिए सीधे तौर पर प्रासंगिक प्रतीत होते हैं, जब वह ज्ञानार्जन की किसी जगह के साथ सम्बन्ध बना रहा हो। इनके अलावा दिखने में कुछ और जटिल सवाल हैं जिन्हें, मेरे विचार से, कोई भी शिक्षक शिक्षण का काम करते हुए दरकिनार नहीं कर सकता।

अनुकूलन की क्या भूमिका है?

यह समझना आवश्यक है कि जीवन में हमारी प्रेरणाएँ और भय केवल हमारे अपने नहीं होते। वे समाज के तौर पर हमारी चेतना

का साझा हिस्सा होते हैं, और कई पीढ़ियों से व्यवस्थित तौर पर बहुत ही बारीकी से अनुकूलित होते हैं। क्या यह देख पाना सम्भव होगा, कि "हम ही संसार हैं" (कृष्णमूर्ति के शब्दों में, माइकल जैक्सन के नहीं !)? हम कुछ विशेष तरह से महसूस करने के लिए अनुकूलित होते हैं : असफल होने का, भविष्य का, सत्ता का भय आदि। हमारी भावनाएँ इस बारे में शायद अधिक बता सकती हैं कि हम कैसे सोचते हैं, न कि संसार की असल प्रकृति के बारे में। शायद हमारे भीतर के इस अनुकूलन की गतिशीलता को देख पाना, उसका अवलोकन कर पाना, हमें उसकी मजबूत पकड़ से आजाद करवा पाए?

किसी बात की जड़ तक पहुँचना और उससे आजाद होना

कुछ सवाल शायद हमारे लिए इन्सान के मस्तिष्क के बारे में हमारी सोच को खोल पाएँ। बहुत बार इस आशय की बात की जाती है कि सीखने के लिए मस्तिष्क को एक तरह से चेतनाशून्य अवस्था से जगाने की जरूरत होती है, कि हमें ध्यान केन्द्रित कर पाने से सम्बद्ध तकनीकें विकसित करनी होंगी नहीं तो हम असावधानी और लापरवाही के भँवर में खो जाएँगे। लेकिन अगर मानव-मस्तिष्क सीखने के लिए हमेशा तैयार ही हो, तो क्या हो? तब क्या हो अगर हमारे विचारों से लगातार उपज रहे व्यक्तिगत अनुभव की सशक्त भावनाएँ और वे बातें जो इस व्यवस्था के लिए खतरा हों, सीखने और ज्ञानार्जन के रास्ते में बाधा का काम करें? तब क्या, जब उभरती हुई इस असावधानी या बेध्यानी का अवलोकन करना ही ध्यान 'देना' हो? हम (विद्यार्थी और शिक्षक दोनों) किस तरह इस प्रस्ताव को ध्यान से देखकर उसके साथ खेल सकते हैं, उसे अलग-अलग तरह से विश्लेषित कर सकते हैं?

हमारे अनुभवों की प्रकृति क्या है और अनुभवकर्ता कौन है?

यह ऐसा सवाल प्रतीत नहीं होता जिस पर शिक्षकों और विद्यार्थियों को सोचने की जरूरत हो। इसके बारे में कोई भिक्षु, उपासिका या तपस्वी तो सोच सकते हैं, लेकिन शायद विद्यार्थी तो नहीं! लेकिन शिक्षा में इन सवालों से जूझने की सम्भावना दिखाई देती है। ये सवाल महत्वपूर्ण हैं क्योंकि हमारा 'स्वत्व', हमारा 'अहं' ही तो वह लेंस है जिसके बीच से गुजरकर संसार का हमारा अनुभव प्रसाधित होता है, एक प्रक्रिया से गुजरकर तैयार होता है। और हम इन अनुभवों के बारे में इतना कम समझते प्रतीत होते हैं क्योंकि हम स्वयं लेंस के बारे में पर्याप्त कुछ नहीं सीखते ! क्या सीखा जा रहा है और किस तरह उसे और बेहतर सीखा जा सकता है, एक अच्छी शिक्षण प्रक्रिया पक्के तौर पर इस बारे में हमारी जिज्ञासा को (एक अच्छे उत्प्रेरक, यानी शिक्षक, के माध्यम से) बढ़ाती है। इससे भी महत्वपूर्ण है कि कौन सीख रहा है, आत्मकथनात्मक स्वत्व के वृत्तांत की रूपरेखा को देखना, और उस स्वत्व और अहं (यानी उस खुद) को देखना जो किसी अन्य के सम्बन्ध में निरन्तर हमारी भूमिका या व्यवहार को तय करता है - वह स्वत्व या अहं जो बार-बार स्वयं को प्रदर्शित करता है, शिक्षक या विद्यार्थी या अभिभावक या किसी भी अन्य रूप में।

इस व्यक्तिगत अहं के मस्तिष्क की और स्वयं तथा संसार के बारे में सत्य के रूप में एकत्र किए जाने वाले छोटे-छोटे कथनात्मक तथ्यों की, प्रकृति और स्वभाव क्या है? हम विद्यार्थियों के साथ इस सबके बारे में बात कर सकते हैं। यह ऐसे सोच-विचार को खोल सकता है जो स्कूल से शुरू होकर पूरा जीवन हमारे सीखने पर प्रभाव छोड़ सकता है।

अच्छी शिक्षा

हमें अक्सर कक्षा में और मंथर गति से चलते जीवन में अच्छे शिक्षक मिल जाते हैं। एक अच्छे शिक्षक के माध्यम से अच्छा शिक्षण एक चिंगारी सुलगाता है, एक जिज्ञासु मस्तिष्क को जन्म देता है, अच्छी शिक्षा सम्भव बनाता है – शिक्षा जो बस विशेष विषयों के ज्ञान के क्षेत्र तक सीमित नहीं है, एक ऐसी शिक्षा जो निरन्तर अवलोकन और अपने भीतर और बाहर के संसार को सुनने को जिन्दा रखती है।

References:

* 11 जून 2016 को प्रकाशित द इकॉनमिस्ट ऑन्लाइन के शिक्षा सुधार खण्ड के लेख **'टीचिंग द टीचर्स'** से उद्धृत :

'पिछले साल नवीनीकृत एक अध्ययन में युनिवर्सिटी ऑव मेल्बर्न के जॉन हैट्टी ने 250 मिलियन विद्यार्थियों के ज्ञानार्जन पर सैकड़ों हस्तक्षेपों के प्रभावों के बारे 65,000 से अधिक शोध-पर्चों के नतीजों का मूल्यांकन किया। उन्होंने पाया कि कक्षा के आकार, वर्दी और योग्यता के आधार पर समूह बनाना जैसे पहलू, जिनके बारे में माता-पिता बहुत ध्यान करते हैं, इस बात पर कोई असर नहीं डालते कि बच्चे सीखते हैं या नहीं।.... महत्वपूर्ण बात "शिक्षक की दक्षता" की है। अध्ययन के तहत स्कूल में ज्ञानार्जन को बेहतर बनाने के सभी 20 सशक्त तरीके इस बात पर निर्भर थे कि शिक्षक कक्षा में क्या करता है।'

** *कृष्णमूर्ति फ़ाउण्डेशन ऑफ इण्डिया, 2005 द्वारा प्रकाशित* ***अ फ़्लेम ऑफ लर्निंग : कृष्णमूर्ति विद टीचर्स।***

कृष्ण हरेश बेंगलूरु की सरहद पर स्थित एक छोटे से स्कूल सेण्टर फॉर लर्निंग (www.cfl.in) में कार्यरत हैं। उन्हें विद्यार्थियों के साथ काम करना अच्छा लगता है। वे मनोविज्ञान, काष्ठकला और थियेटर के बारे में पढ़ाते हैं। उनसे kruxys@gmail.com पर सम्पर्क किया जा सकता है। **अनुवाद** : रमणीक मोहन